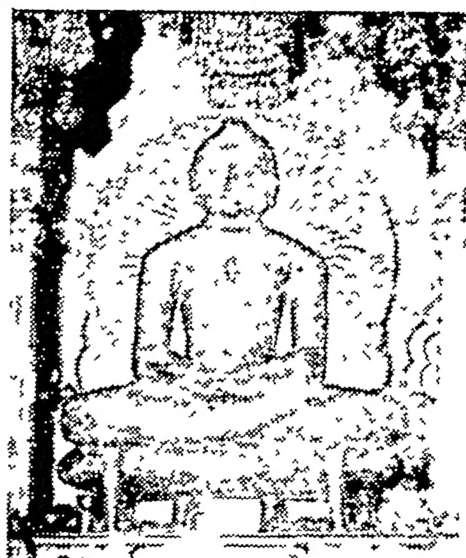
विकास प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स
मामा-भान्जा की दरगाह
फड बाजार, बीकानेर
द्वारा प्रकाशित
प्रथम सस्करण, महावीर जयन्ती
22 अप्रैल '86
नागरी प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा
दिल्ली-110032
द्वारा मुद्रित

मूल्य : 80 00 रुपये

JAI MAHAVEER (EPIC)
by Manak chand Rampuria
Publisher Vikas Printers & Publishers
Mama-Bhanja Ki Dargah
Phad Bajar, Bikaner (Rajasthan)
First Edition Mahaveer Jayanti-22nd April '86
Price Rs 80 00, Printed by Nagri Printers

जय महावीर



तेरा ही 'जय महावीर' मै-
तुझे सर्मपित करता।
अपना सुख-दुख, विजय-पराजय-
जीवन अर्पित करता॥

—माणकचन्द रामपुरिया



आत्म-भाव

तीर्थंकर भगवान् श्री महावीर के तपोनिष्ठ-महा समुद्रवत् जीवन को पढकर, दृष्टि के सम्मुख वही अपार महासिन्धु लहरा उठता है, जिसका न ओर है, न छोर। अनन्त, सीमाहीन जल-राशि। केवल जल-राशि।…और उसकी उच्छल अगाध तरगे।

भगवान् श्री का जीवन साधना के उस पुञ्जीभूत उन्नत शिखर-सा है, जहाँ पहुँचना किसी भी साधारण मनुष्य के लिए अति दुष्कर है, फिर मेरे जैसा सभी तरह से अल्पज्ञ, साधन-विहीन प्राणी उस शिखर की कल्पना भी कर ले, तो यह उसके पूर्व जन्म का पुण्य ही कहा जाएगा।

'जय महावीर' आपके सम्मुख है।

कैसा है ? मैं नही कह सकता। अपनी ओर से मैं तो इतना ही निवेदन करना चाहता हूँ कि तप मूर्ति भगवान् श्री के तेजोमय जीवन के विभिन्न अशो का स्पर्श-मात्र ही इस पुस्तक मे किया गया है। उस अगाध महासिन्धु को पूर्ण रूप मे भला किसने रेखाकित, शब्दाकित किया है ? अथाह सागर लहरा रहा है—तट पर खडे प्राणी अपने-अपने पात्रानुसार जल-राशि ग्रहण करते है। किन्तु, किसी ने सर्वांश मे सिन्धु को ग्रहण किया ? कौन कर सकता है ? तीर्थंकर भगवान् महावीर अथाह, अनन्त पारावार है। इनके जीवन के विभिन्न अगो को एक नजर देख लेना भी सबके वश की बात नही। जो भी इस ओर दृष्टिपात करता है—वह कभी एक पक्ष, कभी दूसरा पक्ष—सम्पूर्ण रूप मे किसने देखा ? अथाह पयोधि को किसने बाँधा है ?

प्रस्तुत काव्य मे जीवन-पक्ष ही प्रधान है। सैद्धान्तिक पक्ष स्पर्श-मात्र ही है। कारण—सैद्धान्तिक पक्ष अभेदकारी है। सभी तीर्थंकरो के साथ सैद्धान्तिक बाते एक ही रही है—उनमे भेद नही है। किन्तु, जीवन-पक्ष मे भेद रहा है। जिस प्रकार आदिनाथ भगवान् ऋषभदेव के तपोनिष्ठ जीवन की तुलना दयामूर्ति भगवान् नेमिनाथ मे अथवा किसी अन्य से नही की जा सकती, इसी प्रकार 24वें तीर्थंकर भगवान् महावीर के तपस्यामय जीवन की समकक्षता, दूसरे से नही हो सकती।

वर्धमान की तपस्या उनकी तपस्या थी। साधना के मार्ग मे उन्होने जो परिसय सहे वे उनके थे। उन अनुभवो की तुलना दूसरे मे नही की जा सकती। जीवन-पक्ष सदा भेदमय ही रहा है।

ग्रन्थ की रचना भी एक सयोग ही है। तीर्थंकर भगवान् महावीर का प्रसग चल उठा था। उनकी अथाह-अगाध तपस्या-निर्भयता आदि की चर्चा चल रही थी। सहसा मन मे आया, भगवान् श्री का जीवन-चरित लिखा जाय। इनके जीवन-चरित ऐसे तो बहुत है, किन्तु काव्य-रूप मे मुझे नही मिले। और फिर मैं जो लिखने बैठा, पुस्तक समाप्त करके ही उठा। लगा उन दिनो भगवान् प्रतिक्षण मेरी दृष्टि के सम्मुख रहे हैं। ऐसा भी लगा है कि उन्होने स्वय लिख लिया है—बात भी सही है—मैं तो, निमित्त मात्र ही हूँ। वे जिस रूप मे प्रेरित करे मैं प्रस्तुत हूँ।

अन्त मे—जिन लोगो से पुस्तक-प्रकाशन मे थोडी भी सहायता मिली है, उनके प्रति आभार प्रकट करते हुए, श्रमण भगवान् महावीर को हार्दिक कोटानुकोटि वन्दन ।।

।। शुभास्तु ।।

—माणकचन्द रामपुरिया

रामपुरिया भवन,
बीकानेर (राज०)
महावीर जयन्ती, 22 अप्रैल 1986

अनुक्रमणिका

जय महावीर

वन्दना

देव दयामय करुणा सागर-
सकल सृष्टि है तेरा अनुचर ॥
ज्ञानमयी तव ज्योति विमल से-
उज्ज्वल भूतल शुभ्र कमल से।

दया करो अब तम मिट जाये-
कलुष न मन मे कुछ रह पाये।
शुभ्र आत्म-दर्शन का क्षण हो-
पावन भूतल का कण-कण हो।

नमन तुम्हें करता हूँ प्रतिपल-
तेरी करुणा मेरा सम्बल।
हो सकल्प हृदय का पूरा-
रहे न कोई भाव अधूरा।

चरणो पर मैं नत-मस्तक हूँ-
तेरे दर्शन का चातक हूँ।
तेरा जीवन पावन धारा-
धन्य हुआ पा भूतल सारा।

पूर्ण कामना हो अन्तर की-
शक्ति जगे नव मेरे स्वर की।
देव दयामय करुणा सागर-
सकल सृष्टि है तेरा अनुचर॥

प्रथम सर्ग

प्रभु की लीला वडी गहन है-
कितना चचल मानव मन है।
जहाँ प्रेम की धार चाहिए-
करुणा अपरम्पार चाहिए।

वहाँ द्वेष-हिसा जगती है-
अशुभ घृणा मन मे पगती है।
तप का निर्मल भाव नही है-
सयम-शान्त-प्रभाव नही है।

शुद्ध तत्व से हीन हृदय मे-
सत्व गुणो के निर्मम क्षण मे।
भव को कैसे शान्ति मिलेगी-
ज्ञान ज्योति की प्रभा खिलेगी ?

कैसे कोई मन बिहँसेगा-
कैसे पुण्य विभव का लेगा ?
सोच, धरित्री अकुलाती है-
समझ नही कुछ भी पाती है।

तभी अचानक दिव्य गगन से-
ज्योति फूटती चेतन मन से।
कोई मार्ग दिखा जाता है-
सुन्दर विश्व बना जाता है।

ज्ञान चेतना का जगता है-
भुवन प्रकाशित-सा लगता है।
द्वेष-घृणा सब घुल जाते हैं-
द्वार पुण्य के खुल जाते है।

मानव-मानव बनने लगता-
ज्ञान हृदय मे जगने लगता।
लेकिन यह भी तब सम्भव है-
होता पावन नर उद्भव है।

और नही तो कोई कैसे-
धो सकता है अन्तर कैसे ?
ऐसे ही जब घटा घिरी थी-
सुख की सारी घडी फिरी थी।

हिंसा का साम्राज्य बिछा था-
मन मे निर्धन भाव छिपा था।
मानव-दानव से लगते थे-
अच्छे भाव नही जगते थे।

सयम की तो बात न पूछो-
कैसी थी वह रात न पूछो।
ज्ञान तपस्या सब दूभर थे-
तिमिराच्छन्न-सघन घर-घर थे।

लोभ ग्रसित धरती रोती थी-
पूरी साध नही होती थी।
दीन-हीन सब नारी-नर थे-
दुख से पीडित अन्तरतर थे।

तभी किरण-सा कोई आया-
भव को निर्मल शुभ्र बनाया।
सब कहते वे तीर्थकर थे-
ज्ञान-किरण नव ज्योति प्रखर थे।

नयी साधना जग मे जागी-
दुख की रजनी तत्क्षण भागी।
यही साधना उज्ज्वल होकर-
भव को ही कल्मप से धोकर।

तेजपुञ्ज हो मूर्त्त रूप मे-
तीर्थंकर के ही स्वरूप मे।
मिली जगत को निर्मल वनकर-
दिव्य प्रभा-सा पल-पल भास्वर।

आकर जग को मार्ग दिखाया-
भव के तम को दूर भगाया।
जग की पावन-पुण्य भूमि पर-
सत्य-तपस्या रूप उतर कर

आत्म-ज्ञान कल्याण वताते-
जन-जन को है सुखी वनाते।
इनके निर्मल पुण्योदय से-
तम पर अविरल ज्योति-विजय से।

भव को निश्चय मान हुआ है-
जन-जन का कल्याण हुआ है।
हुई सृष्टि पर वृष्टि विभव की-
ज्योति जगी नवभव उद्भव की॥

द्वितीय सर्ग

पुण्यमयी यह धरती जिस पर-
आते देव महान।
अपनी दिव्य प्रभा से भव का-
करते है कल्याण॥

जन्म ग्रहण करता है प्राणी-
भूपर बारम्बार।
अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है, जिससे-
होता है उद्धार।।

विमल मोक्ष के तत्व धरा पर-
कर सकते सब प्राप्त।
पुण्य-बीज, जो पडता, होता-
फिरवहनही समाप्त।।

जनम-जनम वह चाहे भटके-
रहता है निर्भीक।
कभी नही वह विचलित होता-
मिलती जिसको लीक।।

सत्पथ की यह लीक प्रबल है-
मानव का आदर्श।
इससे ही होता है निश्चय-
भव का शुभ उत्कर्ष।।

धन्य वही है, जिसको मिलती-
ऐसी निर्मल जोत।
प्रेम भाव में रहता है वह-
प्राणी ओत-प्रोत॥

सभी जीव एक सदृश हैं-
नही किसी मे भेद।
एक तरह ही सभी मनाते-
हर्ष-शोक औ खेद॥

मानव को उन्नत करती है-
और न कोई चीज।
एक मात्र है जहाँ ज्ञान का-
निर्मल सात्विक बीज॥

उसके ऊपर कभी न पडता-
अघ का कुटिल प्रभाव।
सदा अनघ है, सत्यरूपमय-
उसका स्वय स्वभाव॥

महावीर ने भी पाये थे-
भव मे जन्म अनेक।
लेकिन मन मे सदा टिकी थी-
विमल सत्य की टेक।।

जाने कितने जन्म हुए थे-
पाये कितने क्लेश।
किन्तु हृदय मे रहा पुण्य ही-
अतिम क्षण तक शेष।।

जन्म पचीसो का धरती पर-
आया है उल्लेख।
उनके सब कृत्यो का भू पर-
मिलता है अभिलेख।।

एक वार पर मन मे जो था-
जागा दिव्य प्रकाश।
नव-नव वह नित वढता आया-
हुआ न उसका नाश।।

यही भेद है, जब जगता है-
सत्य किरण का रूप।
नित-नित खिलता, पर असत्य का-
हो जाता विद्रूप॥

निर्मल बीज पडा था मन मे-
निर्मल था सस्कार।
फूट पडा वह अनायास ही-
बनकर पुण्य अपार॥

वैमानिक-निकाय मे जब थे-
देव रूप मे लीन।
सोचा, धरती पर आने का-
लेकर जन्म नवीन॥

वैशाली के वृषभदत्त की-
पत्नी प्रभु-लवलीन।
देवानन्दा की कुक्षी मे-
होकर परम प्रवीण॥

उतरे भव मे, भव से निर्मल-
बनकर दिव्य प्रकाश।
रोम-रोम मे देवानन्दा-
के जागा उल्लास॥

सहसा चौदह स्वप्न जगे थे-
भाव भरे भरपूर।
वृषभदत्त थे, सुनकर बोले-
कष्ट हुआ सब दूर॥

तुमने देखे स्वप्न भामिनी-
पुण्यमयी अभिभूत।
होगा सभी गुणो से भूषित-
कोई दिव्य सपूत॥

× × ×

किन्तु सभी का स्वप्न धरा पर-
कब होता है पूर्ण।
विघ्न अनेको आकर करते-
प्रतिक्षण चकना चूर॥

चिन्तित इन्द्र हुए, यह होगी-
भू पर कैसी बात।
किसी दीन ब्राह्मण के घर मे-
विहँसे यह जल जात।।

नही, नही वे क्षत्रिय के घर-
लेगे जन्म उदार।
तभी करेगे पाप-पुञ्ज इस-
धरती का उद्धार।।

× × ×

क्षत्रिय कुण्ड नगर के राजा-
पुण्यव्रती सिद्धार्थ।
सद्धर्मो मे लीन भुवन मे-
रहते सदा परार्थ।।

इनकी रानी त्रिशला भी थी-
जाग्रत ज्ञान-विवेक।
सदा भजन करती थी धर कर-
मन मे प्रभु की टेक।।

गर्भवती वह हर क्षण प्रभु के-
भावो मे तल्लीन।
प्रतिक्षण पूजा करती थी नित-
भर कर भाव नवीन॥

दूत बुलाकर कहा इन्द्र ने-
जाकर आज तुरन्त।
दोनो गर्भो का परिवर्तन-
कर दो प्यारे भत॥

हरी णैगमेषी ने आकर-
देवानन्दा पास।
गर्भ लिया-फिर त्रिशला के घर-
आये वे सोल्लास॥

गर्भ-परावर्त्तन का सारा-
काम हुआ जव शेष।
स्वय इन्द्र से वोला-पूरा-
हुआ सभी आदेश॥

सुनकर इन्द्र बहुत हर्षाए-
बोले-तुम हो धन्य।
तुम्ही देखना इससे जग मे-
होगे कार्य अनन्य।।

आज धरा पर जो सकट है-
होगे निश्चय नष्ट।
अपनी ज्ञान विभा से भू का-
दूर करेगा कष्ट।।

तुमने पूरा किया आज है-
देवो का ही काम।
निश्चय ही धरती पर होगा-
इसका शुभ परिणाम।।

देवपूज्य यह मनुज धरा को-
देगा शुभ वरदान।
इसके वचनामृत से होगा-
कष्टो का अवसान।।

धन्य कुक्षि त्रिशाल की पावन-
निर्मल परम पवित्र।
तेज-पुन्य अवधारित जिसमे-
जग का शाश्वत मित्र।

आज विश्वमाता है त्रिशला-
जननी परम पुनीत।
गूँजेगे इस जग मे उसके-
भाग्य विभव के गीत॥

धन्य स्वय सिद्धार्थ कि जिन को-
प्राप्त हुआ यह इष्ट।
पायेगे जो जग मे ऐसा-
उत्तम पुत्र अभीष्ट॥

तृतीय सर्ग

महाराज सिद्धार्थ भवन मे-
भजते थे नित प्रभु को मन मे ।
उनका पुण्य भरा था जीवन-
सुख-सौभाग्य भरे थे पुरजन ।।

कहीं न कोई कष्ट हृदय मे-
रहते थे वे सुख अक्षय मे।
भाग्यवती वह त्रिशला रानी-
सभी तरह से थी कल्याणी ॥

नृप के ही सग वह भी रहती-
प्रभु की परम भक्ति मे वहती ॥
जग मे रहकर जग से वाहर-
कमल-पत्र-सी निर्मल सुन्दर ॥

उसके जीवन की थी रेखा-
प्रभु को प्रतिक्षण उसने देखा ॥
था ऐश्वर्य वहाँ पर सारा-
उन्नत था सौभाग्य सितारा ॥

किसी वस्तु की कमी नही थी-
दुख की वातें नही कही थी।
सुख से सब का मन चचल था-
भरापुरा वह राज महल था।

सुख के बाजे नित बजते थे-
मन से सुन्दर सब सजते थे।
कोट-कँगूरे सब थे सुन्दर-
सुन्दरता थी भीतर बाहर ।।

जहाँ जरा भी आँखे जाती-
सुन्दरता से ही टकराती।
रेशम जैसा कण-कण कोमल-
नयन-नयन मे कज्जल-काजल ।।

कही न कोई तनिक मलिन थे-
सबके ही मन भावन दिन थे।
सब थे सुन्दर, हृदय खिला था-
फूलो को मकरन्द मिला था ।।

बागो मे कोयल नित गाती-
मधुपावलियाँ थी मँडराती।
तरह-तरह के फूल सलोने
खिले हुए थे कोने-कोने ।।

पुष्पित-सी थी पूरी नगरी-
कमल-नाल-सी ऊपरउभरी।
हर्षित थे सब चहल पहल मे-
अपने सुरभित रूप धवल मे॥

नव उमग-सी लहराई थी-
सुख की विमल घटा आई थी।
त्रिशला अपने राज भवन मे-
तद्रिल सोच रही थी मन मे॥

प्रभु की मनहर-सुखमय गाथा-
साधु-जनो ने जिसे कहा था।
सहसा लगा कि बाहर मन से-
कुछ है निकला उसके तन से॥

और पुन वह उर में आया-
मानो उसने सरवस पाया।
गर्भ-परावर्त्तन का क्षण था-
पल-पल सुन्दर मन भावन था॥

रोम-रोम था उसका पुलकित-
महानन्द की छवि से शोभित।
जागी मन मे नयी विभा-सी-
हो ज्यो प्रभु-दर्शन की प्यासी ॥

लगा कि जैसे जाग गयी है-
किरण-किरण तक नयी-नयी है।
सिह सामने आकर सुन्दर-
देख रहा था उसको जी भर ॥

हाथी भी फिर वहाँ खडा था-
ऐरावत-सा बहुत बडा था।
वृषभ एक सुन्दर-सा आया-
सुख सौभाग्य धरा पर छाया ॥

फिर तो, खुद ही लक्ष्मी आई-
शेष बचा जो सब कुछ लाई।
युगल, पुष्प माला थी मनहर-
नये-नये-फूलो मे गुँथकर ॥

चाँद गगन में मुस्काता था-
मन का मोद बढा जाता था।
सूर्य देव भी नभ मे आये-
भू के तम को दूर भगाये ।।

ध्वजा गगन मे फहराती थी-
कीर्ति भुवन की वढ जाती थी।
रौप्य कुम्भ था सुन्दर-मनहर-
चम चम जैसे स्वय दिवाकर ।।

पुन दृगो मे आया सुन्दर-
सुरभित मगल पद्म सरोवर।
पुन. क्षीर सागर लहराया
क्षण-क्षण का आनन्द वढ़ाया ।।

देव विमान दिखा फिर ऊपर
महामोद मे पुलकित सत्वर।
रत्न राशि की ढेर लगी थी-
नयन-नयन में प्रीत जगी थी ।।

विमल अग्नि निर्धूम जगाये-
सुख-सौभाग्य भुवन के आये।
ये चौदह अनमोल सुहाने-
सपने देखे थे त्रिशला ने।

देख हुई थी पुलकित मन मे
सुख के आँसू गिरे नयन मे।
आकर पति के पास हृदय से
प्रीति-सजोये नेह-निलय से।

बोली-महाराज की जय हो-
परम भक्ति की सदा विजय हो।
राजन, मैंने खुद ही अपने-
देखे है कल चौदह सपने।

इतना कह वह फिर बतलाती-
एक-एक कर नाम बताती।
हँसकर पूछा-अर्थ भला क्या?
है सपनो की नयी कला क्या?

मुझे बता दे, मैं क्या जानूँ-
कैसे, यह लीला पहचानूँ।
ये सपने है कितने पावन-
कैसे कह दूँ मन-से भावन।

इसी लिए मे पूछ रही हूँ-
सुख सरि मे कल रात बही हूँ।
राजभवन मे नृप ने आ के-
स्वप्न विशारद को बुलवा के।

पूछा-इसका अर्थ बताये-
कुछ मतलब इसका समझाये।
सब ने शुभ मुहूर्त फिर देखा-
लिया ग्रहो का भी सब लेखा।

सब नक्षत्रो की शुभ गति को-
देखा आदि और फिर इति को।
पोथी-पत्र लिया, विचारा-
था मुहूर्त्त वह अनुपम न्यारा।

मन से क्षण मे हुए अचम्भित-
रोम-रोम तक हो आनदित।
बोले राजन शुभ्र प्रहर है-
बडा दयामय परमेश्वर है।

क्या बतलाऊँ यह सब क्या है-
मिला तुम्हे धन त्रिभुवन का है।
जो कहता हूँ, सच कहता हूँ-
ज्ञान-ज्योति मे ही रहता हूँ।

वीणापाणी जो कहलाती-
ज्ञानमयी जो कुछ बतलाती।
वही तुम्हे कहता हूँ सुन लो-
बात हमारी मन से गुन लो।

पुत्र रत्न जो होगा तुम को-
नष्ट करेगा भव के तम को।
सर्व श्रेष्ठ वह ज्ञानी होगा-
आत्मिक बल का मानी होगा।

तपोनिष्ठ सौन्दर्य विभव का-
मगल करने वाला भव का।
पुत्र रत्न वह होगा ऐसा-
हुआ न भू पर अब तक जैसा।

सब गुण भूषित सबसे सुन्दर-
चकित रहेगे खुद विश्वम्भर।
सुनकर नृपति मोद मे भर कर-
आये राजमहल मे सत्वर।

बोले-रानी से मुस्का के-
उनको अपने पास बिठा के।
देखो, सब ने बतलाये है-
स्वप्न बडे सुन्दर आये है।

बालक तुम्हे मिलेगा ऐसा-
हुआ नही भू-तल पर जैसा।
सुनकर रानी पुलकित तन से-
प्रभु की पूजा की फिर मन से।

विप्र महाजन को बुलवाया-
सबको सादर वहाँ बिठाया।
दान दिया अञ्जुलि मे भरकर-
किया सभी कुछ स्वय निछावर।

रोम-रोम तक उसका जागा-
दु ख-दैन्य सब भव से भागा।
करना है अब प्रभु का स्वागत-
यह अपूर्व क्षण का है आगत।

मन मे निर्मल भाव जगाये-
सब ने मिलकर मोद मनाये।
आनन्द लहर लहराई भू पर-
पुष्प खिले खुशियो के मनहर।

चतुर्थ सर्ग

धरती थी यह सुभग सलोनी-
कण-कण था सरसाया।
तृण-तृण तक मे खुशी अपरिमित-
मोद अतुल लहराया॥

पेड़ों की फुनगी पर चिड़िया-
गीत मनोहर गाती।
मलियानिल की पुरवाई-सी-
हवा गध ले आती॥

नील गगन मे खुशियाँ छाईं-
किरण-किरण थी पुलकित।
पृथ्वी के कण-कण पर मानो-
नयी प्रभा आलोकित॥

सभी तरफ आनन्द-लहर थी-
वडी सुखद लहराई।
जाने कैसी घडी सुवासित-
वसुधा पर थी आई॥

लगा कि सबने मिलकर की है-
स्वागत की तैयारी।
घर-घर मे लगता था जैसे-
उत्सव होता भारी॥

कदलि-खम्भ सब रोप रहे थे-
वन्दनवार सजाते।
मुकुल-ब्रकुल तक पर थे भँवरे-
गुन-गुन कर मँडराते॥

चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी थी-
मध्यरात की बेला।
राज महल मे लगा हुआ था-
साधु-जनो का मेला॥

ऐसे ही क्षण, प्रभु भी मानव-
तन मे स्वय पधारे।
बने महारानी त्रिशला के-
दृग के नूतन तारे॥

शुभ मुहूर्त्त वह मगल क्षण था-
भाव-सुमन मुस्काया।
शकुन सुमगल आज धरा पर-
स्वय उतर कर आया॥

राज महल मे जय-जय गूँजा-
गूँज उठी शहनाई।
सिह द्वार पर मधुर स्वरो मे-
वजने लगी वधाई।।

लोग-वाग सब आ-आ कर थे-
स्वय वधाई देते।
विप्र-महाजन दान नृपति से-
मुँहमाँगा ही लेते।।

दिव्य प्रकाश धरा पर फैला-
भागा तिमिर भुवन का।
सुरभित पवन प्रवाहित होकर-
आता था नन्दन का।।

देवलोक की स्वय देवियाँ-
दौडी भू पर आई।
प्रभु का कर श्रृगार उन्हे फिर-
नूतन पर पहराई।।

होकर सब अभिपुष्ट वहाँ से-
देवलोक मे आ के।
प्रभु का सब गुण-गान सुनाया-
उनका मगल गा के॥

आकर किया प्रणाम इन्द्र ने-
मन से पुलकित होकर।
अपनी दिव्य किरण से प्रभु के-
पावन पग को धोकर॥

उनको लेकर तत्क्षण फिर वे-
आये मेरु-शिखर पर।
सजा वही पर जन्म-लग्न का-
पहला उत्सव मनहर॥

मेरु-शृग के ऊपर सुन्दर-
एक शिला पर लेकर।
वैठे इन्द्र स्वय थे सबको-
शुभ निदेश कुछ देकर॥

सभी देवता और देवियाँ-
आये खुशी मनाने।
प्रभु के पावन जन्मोत्सव मे-
मगल साज सजाने।।

देवलोक मे वजी वधाई-
गूंजा साज मनोहर।
कल्प-वृक्ष ने फूल गिराये-
खिलकर उनके ऊपर।।

प्रभु का शुभ अभिपेक हुआ फिर-
स्वर्ण-कलश के जल से।
स्वय अलकृत हुए मागलिक-
अगरु गध-शतदल से।।

जन्मोत्सव का देव-पुरी मे-
हुआ महोत्सव पूरा।
शकर ने भी वहाँ खुशी मे-
छाना भाँग-धतूरा।।

तरह-तरह के मोदक लड्डू-
सबने खूब लुटाये।
सभी मगन थे आज धरा पर-
स्वय महाप्रभु आये॥

× × ×

इन्द्रराज फिर लेकर उनको-
राजमहल मे आये।
त्रिगला के ही स्वर्ण-सदन मे-
चुपके उन्हे सुलाये॥

प्रभु की लीला, जैसे ही वे-
धरती पर है आते।
जाग उठे सब बडी खुशी से-
अपने मोद मनाते॥

होने लगी धरा पर फिर से-
उत्सव की तैयारी।
राज महल फिर गूंज उठा औ'-
जुड आये दरबारी॥

वजे नगाडे-शख अनेको-
ढोल-झॉझ औ' तासा।
झर-झर झरे खुशी से लोचन-
रहा न कोई प्यासा॥

जन-परिजन औ' पुरवासी सव-
आकर जय-जय कहते।
महामोद की लोल लहर मे-
सव थे निर्भय रहते॥

सव कुटुम्व के लोग जुटे औ'
गुणी-पुरोहित आये॥
वर्धमान है नाम शुभकर-
सव ही यह वतलाये॥

कहा कि ये सम्पन्न गुणो से-
परम धीर है आये।
चक्रवती-नृप, श्रेप्ठ जनो के-
लक्षण है सव पाये॥

कहा कि जब तक चन्द्र-दिवाकर-
इनका नाम रहेगा।
इनके अतुल पराक्रम की नित-
गाथा विश्व कहेगा॥

पंचम सर्ग

गुण ही मानव को मानव से-
उन्नत श्रेष्ठ बनाते हैं।
अपनेपन को विकसित करके-
मनुज देव बन जाते हैं ।।

देव-मनुज मे इस धरती पर-
थोडी-सी ही दूरी है।
पूर्ण विकास हुआ तो उसकी-
यात्रा होती पूरी है॥

सद्गुण के जो बीज हृदय मे-
एक बार भर आते है।
दिन-दिन वे बढते जाते है-
कभी नही मिट पाते है॥

जग मे जो भी आते आ के-
भू का धर्म निभाते है।
खेल-खेल मे दिव्य - ज्योति का-
दर्शन स्वय कराते है॥

वर्धमान के गुण की चर्चा-
देवपुरी मे होती है।
स्वय इन्द्र ने कहा कि वीरो-
मे यह अद्भुत मोती है॥

बालक पन से ही है इसमें-
लक्षण सब पुरुषोत्तम के।
कूट-कूट कर भरे हुए है-
निर्भय-गुण नर-उत्तम के।।

यह है, जिसको इस धरती पर-
कोई डरा नही सकता।
इनके मन को मलिन जरा भी-
कोई बना नही सकता ।।

महज आठ ही वर्ष अभी तो-
इनके होने को आये।
लेकिन खेल विकट पौरुष के-
कितने ही है दिखलाये।।

देवो मे ही कितने आ के-
कठिन परीक्षा लेते है।
कितने आकर परम तत्व की
इनसे दीक्षा लेते है।।

खेल रहे थे 'आमल की' का-
खेल एक दिन उपवन मे।
एक देव बन सर्प भयकर-
आया तत्क्षण उस वन में॥

विषधर अपने फन को ताने-
शीश उठा फुकार उठा।
स्वय पवन भी क्षुभित गरल से-
होकर अपरम्पार उठा॥

साथी-सगी जो भी थे सब-
देख उसे घबडाते है।
खेल छोडकर डर के मारे-
वे सब भागे जाते है॥

कोई कहता भागो जल्दी-
विषधर बडा भयकर है।
वर्धमान ने कहा, रोक कर-
मुझे नही इसका डर है॥

उनका मुखडा सदा प्रफुल्लित-
भय का था लव-लेश नही।
चिह्न तनिक उद्विग्न हृदय का-
आनन पर था शेप नही ॥

तुरत पकड कर उस विपधर को-
दूर कही धर देते है।
अपनी पूरी मित्र मण्डली-
को निर्भय कर देते है ॥

× × ×

हुए सफल जव वर्धमान तब-
देव पुन अकुलाते है।
नयी परीक्षा लेने के हित
दौड धरा पर आते है ॥

एक दिवस सव वालक मिलकर-
खेल रहे थे उपवन मे।
छद्म वेश मे देव पधारे-
द्वेप भरा था कुछ मन मे ॥

खेल-खेल मे वर्धमान को-
कधे पर ले भाग चला।
अनायास उस वाल-मडली
को वह सहसा त्याग चला॥

जैसे ही वह भागा बालक-
अन्य सभी घवडाते हैं।
लेकिन कोई वर्धमान को-
वचा नही वे पाते है॥

जैसे ही वह भागा क्षण मे-
विकट-वेश धर लेता है।
अपना वदन वढाकर भीषण-
दानव का कर लेता है॥

कधे पर थे वर्धमान वे-
तनिक नही घवडाते है।
वज्र मुप्टि से उसके सिर पर-
घूसा एक लगाते है॥

उस प्रहार से व्यथित देव ने-
सद्विवेक सव खो डाला।
आज पडा था उसे भयकर-
पुरुप-सिह से ही पाला ।।

होकर प्रकट तुरत निज तन मे-
क्षमा माँगता है सत्वर।
शान्त हुए फिर वर्धमान भी-
अभय दान उसको देकर ।।

वाल-मडली हर्पित होकर-
मन से खुशी मनाती है।
दूर-दूर तक इनकी गाथा-
सदा फैलती जाती है ।।

देव-लोक मे गुजित थे स्वर-
देव सभी हर्पाए थे।
वर्धमान के जय की गाथा-
सुनकर दौडे आए थे ।।

गूँज रहा था जय-जय का स्वर-
देव-गणो के कानो मे।
वर्धमान की जय के स्वर थे-
गुजित पवन तरानो मे॥

कल्पवृक्ष की डाली-डाली-
इस स्वर को दुहराती थी।
स्वर्ग-लोक की माल्यवती से-
इसकी ही ध्वनि आती थी॥

मलय पवन चलता था, वह भी-
जय का ही स्वर लाता था।
वर्धमान की जय का स्वर ही-
सभी तरफ से आता था॥

नन्दन वन के फूल सुकोमल-
विहँस-विहँस खिल जाते है।
उनके सौरभ मे भी जय के-
स्वर ही भर कर आते है॥

नन्दन वन मे देव - गणो की-
सभा तुरत लग जाती है ।।
वर्धमान की 'जय' तत्क्षण ही-
वहाँ पहुँच जग जाती है ।।

दिशा-दिशा मे गूंज रहा था-
वर्धमान की जय का स्वर ।
शिखर-शिखर तक गूंज रही थी-
प्रतिध्वनि उसकी ही सुन्दर ।।

स्वय इन्द्र ने भरी सभा मे-
उनको समुचित मान दिया ।
"महावीर" उद्घोपित कर के-
उनको नव सम्मान दिया ।।

वर्धमान को 'महावीर' यह-
पावन नाम प्रदत्त हुआ ।
उनके गुण-गौरव की महिमा-
सुनकर सब आसक्त हुए ।।

उनके विकट पराक्रम के सब-
गाथा जग मे ख्यात हुए।
महावीर के शुभ्र नाम से-
जग मे वे प्रख्यात हुए।

वालक-पन से ही सब उनके-
यश की गाथा गाते है।
उनके पावन चरित धरा पर-
सुनते और सुनाते है।।

वल-विक्रम की अनुपम गाथा-
घर-घर मे सव गाते है।
महावीर के पावन पग पर-
श्रद्धा सुमन चढाते है।।

इनके चरित्र-सिन्धु का जो भी-
अवगाहन कर पाता है।
भव मे वह भी होकर निर्मल-
खुद पवित्र वन जाता है।।

षष्ठम सर्ग

सभी गुणो के जो है धारक
होते वे ही जग-उद्धारक।
मति-श्रुति निर्मल अवधि-ज्ञान से-
सदा समन्वित गुण महान् से।

उनका सत्य स्वरूप निरन्तर-
सदा प्रकाशित निखर-निखर कर।
उनको कुछ भी दोष न रहता-
मन मे दुख अवशेष न रहता।

बुद्धि विमल खुद सब कहती है-
पास शारदा नित रहती है।
लेकिन जग के प्राणी कैसे-
समझे को है निर्मल ऐसे।

जग की लीक निराली होती-
दृग भरमाने वाली होती।
उसको शाश्वत ज्ञान न होता-
पत्थर को आँसू से धोता।

आँख हृदय की जब खुलती है-
कालिख मन की जब धुलती है।
तभी समझ वह कुछ पाता है-
'विश्व निराला'-कह जाता है।

स्वयं नृपति सिद्धार्थ विकल थे-
पुत्र मोह से खुद चचल थे।
विमल 'ज्ञान शाला' मे जा के-
वर्द्धमान को खुद धैठा के।

सोचा, निर्मल ज्ञान मिलेगा-
भूतल पर सम्मान मिलेगा।
पता नही था, जो है कर्त्ता-
आखिर भुवन का पोपक भर्त्ता।

वही देह धर मूर्त्त खडा है-
जग का फिर क्या तत्व वडा है।
हस्तामलक उसे सव रहता-
उसकी वाणी से सब कहता।

भू पर इन्द्र उतर आते है-
स्वय 'ज्ञान शाला' जाते है।
महावीर को खुद ही लेकर-
बैठते गुरु के आसन पर।

चकित सभी होकर के क्षण मे-
लगे सोचने अपने मन मे।
यह क्या रीति जगत की भाई-
इसने कैसी वुद्धि दिखाई।

स्वय इन्द्र ने प्रश्न अनेकों-
किये और फिर कहा कि देखो
इनका गुम्फित तत्व समझ कर
कौन भला दे सकता उत्तर।

महावीर ने सब उद्घाटन-
किया वताकर सब विश्लेषण।
सुनकर जन-जन हुए अचम्भित-
दिव्य ज्ञान से भाव-समन्वित।

फिर तो ज्ञान प्रभा लहराई-
दिव्य छटा धरती ने पाई।
लोग हुए पुलकित आनदित-
प्रभा समुज्ज्वल से सदीपित।

उनको राज महल मे लाकर-
किया प्रतिष्ठित उच्चासन पर।
वढकर उनसे धीर कहाँ है-
ज्ञान मति गम्भीर कहाँ है।
× × ×

इसी तरह क्षण लगे वीतने-
समय सुहावन लगे रीतने।
युवा अवस्था प्राप्त हुए जव-
महावीर भव-आप्त हुए जव।

सोचा नृप ने, चाह करे अव-
इनका शुभ्र विवाह करे अव।
समरवीर सामन्त वही थे-
शुद्ध तत्त्व-विद्वान कही थे।

पुत्री उनकी पावन शुभदा-
पुण्यवती थी नाम यशोदा।
× × ×
नगर-डगर सव सजा सुहाना-
गीतो का फिर जगा तराना।

शोभा पूरे राज नगर की-
गली-गली की डगर-डगर की।
ऐसी थी मन मोहक, जिसकी-
उपमा देना किसके वस की।

लोग-बाग सब सजे-धजे थे।
घर-घर बाजे खूब बजे थे॥
सभी तरफ बस सुख लुटता था-
मानो दुख का दम घुटता था।

धूम धाम से व्याह रचाया-
जिसने माँगा जो भी, पाया।
मिली यशोदा महावीर से-
ज्ञान-दीप, दृढ, परम धीर से।

× × ×

राग रंग सब होते घर-घर-
झर-झर झरते सुख के निर्झर।
पुत्री एक हुई फिर चंचल-
दूध-धुला तन कोमल-कोमल।

भोली-भाली बडी मुहसना-
नाम पडा था—पुण्य-दर्शना।
उसे देख सब खुश होते थे-
पुण्य सलिल से दृग धोते थे।

× × ×

सुख-वैभव सब भरा-पुरा था-
सभी भले कोई न बुरा था।
एक कामना सबके मन मे-
बसी हुई थी राज सदन मे।

बने नही वे परम विरागी-
बने मधुर जीवन-अनुरागी।
यही रहे, यह धरा न त्यागे-
हमे छोडकर कभी न भागे।

× × ×

किन्तु, तपस्वी महावीर ने-
कब सोचा यह परम धीर ने
उनके मन मे लगन लगी थी-
भव के हित की जोत जगी थी।

राग-रंग तो सब होते थे-
इनमे पर वे कब खोते थे।
इनमे इन से ऊपर रह कर।
रत थे साधन मे सब सह कर।

कोई इनको बाँध न पाया-
किसी लोभ ने नही सताया।
पत्नी आई, रहे अकम्पित-
पुत्री भी आती थी पुलकित।

किन्तु ग्रहण का भाव नही था-
बन्धन-स्नेह-प्रभाव नही था।
जल मे रह कर जल से ऊपर-
सरसिजवत् ही थे जीवन भर।

कठिन साधना का तप सहते-
भव मे भव से ऊपर रहते।
× × ×
बढ़ता आया समय निरन्तर-
महाराज थे चिन्तित भू पर।

त्रिशला भी थी ध्यान लगाये-
मन मे प्रभु को सदा बसाये।
दोनो ने ही यहाँ धरा पर-
किये पुण्य ही थे जीवन-भर।

तन पवित्र औ शुद्ध हृदय था-
जीवन साधनमय निश्चय था।
देकर श्री, नन्दी वर्धन को-
राजपाट औ सारे धन को।

कर सथारा स्वर्ग सिधारे-
चमके नभ मे दिव्य सितारे।
× × ×
महावीर ने सोचा मन मे-
सब का हो कल्याण भुवन मे।

महज अठाइस वर्ष हुए थे-
यौवन के उत्कर्ष हुए थे।
सोचा, इस गृहस्थ आश्रम को-
स्वय तिलाञ्जलि देगे तम को।

महाप्रस्थान करेंगे सत्वर-
होगा जिससे भूतल सुन्दर।
ज्येष्ठ-बन्धु नन्दीवर्धन से-
बोले, श्रद्धा पूर्वक मन से।

नत मस्तक हो किया निवेदन-
भइया तुमको मेरा वन्दन।
हाथ जोडकर कहता हूँ मैं-
भव की पीडा सहता हूँ मैं।

दुनिया के दुख कैसे-कैसे
रहूँ देखता कैसे, ऐसे।
जाने दे, मैं सच कहता हूँ-
रह कर घर मे कब रहता हूँ।

सुनकर बोले— नन्दीवर्धन-
रोकेगा क्या तुमको बन्धन।
जान रहा हूँ तेरी लीला-
देखा रूप अतुल चमकीला।

तुम इस जग के नहीं जीव हो-
महाज्योति की प्रबल नीव हो।
वही करोगे, जिसमे निश्चय-
होगी धरती दुख से निर्भय।

किन्तु कहो क्या, बोलूँ मुख से
माता और पिता के दुख से।
अभी कहाँ कुछ त्राण मिला है-
लगता मन पर धरी शिला है।

ऐसे मे जब तुम भी मेरे-
पास न होगे साँझ-सवेरे।
तब मै कैसे जी पाऊँगा-
कैसे साँस चैन की लूँगा।

फिर भी मैं कुछ रोक न सकता-
पथ से तुमको रोक न सकता।
जिसमे जग का पुण्य समाहित-
उसको बाँधू अपने ही हित।

ऐसा कभी नही कर सकता-
सिर पर पाप नही धर सकता।
अभी मात्र दो वर्ष यहाँ पर-
रहो हमारे साथ बन्धु वर।

फिर जो चाहोगे, कर लेना-
पुण्य जगत का सिर धर लेना।
कभी नही मै रोकूंगा फिर-
जगत तेरी ही है आखिर।

इतना कह कर शान्त हुए जब-
महावीर ने चरण छुए तब।
फिर वे बोले—जो कहते है-
खूब समझता, जो सहते है।

बात आपकी मान रहा हूँ-
अलग आपसे भला कहाँ हूँ।
दो वर्षो तक अभी रहूँगा-
यही तपस्या-ताप कहूँगा।

खिले कि जैसे खिलता शतदल।

सुख से वे क्षण भर हर्षाए-
दृग मे अश्रु खुशी के छाए।

सप्तम सर्ग

महावीर थे पुण्य धरा पर
मन से परम तपस्वी।
मन विजेता दिव्य ज्ञान के-
ज्ञानी श्रेष्ठ मनस्वी॥

राज महल में साधु-सरीखे-
सौम्य सरल थे रहते।
सयममय जीवन था उनका-
वात विनय से कहते।।

उनतीस वर्षों मे ही वे जव-
और प्रौढ वन आए।
नौ लोकान्तिक देव वहाँ पर-
आकर कुछ समझाए।।

कहा कि—"जय हो! महावीर ही-
अब कल्याण करेंगे।
भव मे दुख का जो प्रदाह है-
निश्चय वही हरेंगे।।

धर्म तीर्थ की शीघ्र स्थापना-
अव तो शीघ्र कराये।
जग का हो कल्याण, यहाँ सुख-
शान्ति विमल फैलाये।।

विनय सुनाकर देव वहाँ से-
आये नील निलय मे।
लगे सोचने महावीर भी-
अपने शुद्ध हृदय मे।।

एक वर्ष ही शेष बचा है-
प्रव्रज्या लेने मे।
चलो लगूँ मै अभी यही से-
अपना सब देने मे।।

मुक्त हस्त से दान सभी को-
देते है नित उठकर।
मणि-धन-वस्त्राभूषण कितने
नव-नव किए निछावर।।

गेह-त्याग के पूर्व यही तो-
सबसे उत्तम साधन।
महावीर ने लिया खुशी से-
उसका ही आलम्बन।।

एक वर्ष तक हँसते-हँसते-
सब कुछ वहाँ लुटाये।
खुद को अपने आप तपाकर-
और सुदृढ बन आये॥

रहा न कोई दृग के आगे-
रीता वहाँ अकिंचन।
मुक्त हस्त से महावीर ने
जहाँ लुटाया कचन॥

× × ×

वर्षीदान हुआ जब पूरा-
कर ली नव तैयारी।
आत्मा के नव शुद्ध वरण मे-
चलने की थी वारी॥

सुरसरि की धारा हो जैसे-
शुद्ध भाव थे जगते।
हस्तामलक सिद्धि थी सारी-
दूर नही कुछ लगते॥

जग का हो कल्याण इसी मे-
सदा निरत रहते थे।
परम शान्ति की बात हृदय से-
सब को ही कहते थे।।

मन मे कल्मष नही शेष था-
दृढ थे अपने व्रत पर।
मन साधना के तप से ही-
बढ़ते रहे निरन्तर।।

वर्षीतप की लीला सब ने-
अद्भुत देखी भू पर।
पाते थे सन्तोष अखण्डित
अपना सब कुछ देकर।।

जो भी लेना महा प्रमादी-
समक्ष मुखी हो जाता।
वह भी प्रभु के विमल भाव मे-
सहज वही खो जाता।।

महावीर की महा प्रसादी-
कह-कह कर सब लेते।
सबकी इच्छा सरल भाव से-
पूर्ण तुरत कर देते॥

विनय-सहित सब ले लेते थे-
महावीर जो देते।
कोई प्रश्न न उठता मन मे-
जब प्रसाद वे लेते॥

महावीर की महाप्रसादी-
सबके सुख की दाता।
पाकर निर्धन भी धनवाला-
क्षण मे ही बन जाता॥

एक वर्ष की कठिन साधना-
पूरी जब हो आई।
किरण विमल फूटी अम्बर मे-
जन-जन की सुखदाई॥

अष्टम सर्ग

महावीर अनगार धर्म के-
लिए स्वत उद्यत हैं।
त्याग मोह सम्पूर्ण परिग्रह-
जीवन मे ही रत है॥

स्थावर-जगम जो भी दिखते-
सृष्टि लुभाने वाली।
कुञ्ज-लता सुपमित छवि जग की
मन बहलाने वाली॥

सबमे है आसक्ति भरी सब-
पथ के रोडे होते।
ये आकर्षण पुण्य नही, बस-
बीज जहर के बोते॥

सबसे बडा मोह का बन्धन-
चाहे वह हो जैसा।
रह सकता है मुक्त मनुज ही-
शुद्ध रूप मे वैसा॥

निखिल सृष्टि के हित मे जो है-
परम भाव वैरागी।
पूर्ण ज्ञान परिपुष्ट समाहृत-
सकल वासना त्यागी॥

महावीर के तेजोमय तप-
पावन गगा जल-से।
धुल कर दीप्त-पवित्र बने थे-
अपने सात्विक वल से।।

शुभ परिणाम पुण्य है उसका-
अशुभ पाप का कारण।
देख लिया था इस धरती पर-
इसका कठिन निवारण।।

अपना हित जो चाहे उसको-
सवका हित है करना।
और नही तो पडता जग मे-
उसको सदा विचरना।।

आत्मा का सव दु ख स्वय का-
निर्मित पुञ्ज गहन है।
आत्मलीन होने पर ही तो-
निर्मल होता मन है।।

ऐसा होकर आत्मा खुद-
परमात्मा ही वन जाती।
फिर वह सारे कर्मों से खुद-
छुटकारा है पाती।।

खुद गवेषणा करनी होगी-
आत्मा ही के द्वारा।
नष्ट न होता आत्मा का यह-
सात्विक दृढ ध्रुव तारा।।

महावीर ने जान लिया जो-
भाव हृदय में जगता।
वही मूल वन्धन का कारण
जीवो में है लगता।।

इससे मुक्ति प्राप्त करना ही-
केवल ध्येय मनुज का।
कभी नही बन्धन मे रहना-
कोई श्रेय मनुज का।।

महावीर तैयार खडे थे-
मन को सबल बना के।
मन मे पावन प्रभा समुज्ज्वल-
की नव-ज्योति जगा के॥

इधर ज्येष्ठ भ्राता ने नूतन-
उत्सव एक रचाया।
दीक्षा के मगल क्षण के हित-
पूरा नगर सजाया॥

नये महोत्सव की खुशियाँ थी-
व्यक्ति-व्यक्ति पर छाई।
घर-घर मे आनन्द, लहर की
धारा उमडी आई॥

सोने चाँदी के कलशो मे-
पावन जल भरवाया।
इन्द्र आदि देवो ने प्रभु का-
सब अभिषेक कराया॥

अगरु-धूप चन्दन से वासित-
तन पर लेप लगाया।
तन पर रेशम वस्त्राभूषण-
प्रभु को वहाँ पिन्हाया॥

पुष्प सदा अम्लान रहे जो-
उसकी माला लेकर।
खुशी मनायी नर-नारी-ने-
भेंट हृदय से देकर॥

दीक्षा की वह शोभा यात्रा-
उमडी राज नगर से।
बाल-वृद्ध औ युवक-युवतियाँ-
निकल पड़ी घर-घर से॥

परम सिद्धि की प्राप्ति हेतु प्रभु-
निकले राजमहल से।
आत्मा को परिलक्ष्य वनाये-
भव के कोलाहल से॥

शिविका एक शुभग थी जिसमे-
बैठे प्रभु मन भावन।
परिजन औ पुरवासी बैठे-
उनके पग मे पावन॥

देवो औ इन्द्रो ने मिलकर-
दिव्य पालकी लाई।
करते जय का नाद स्वय ही-
पहले उसे उठाई॥

प्रभु के महात्याग का आशिष-
महिमा सिर पर लेते।
जुटे हजारो भाव-भरे सब-
उन्हे विदाई देते॥

शुभ्र विजय मुहूर्त्त से बढकर-
ज्ञात-खण्ड सब आये।
'जय-जय' का स्वर गूंजा, सबने
प्रभु के दर्शन पाये॥

प्रभु ने अपना वस्त्राभूपण-
आकर यही उतारा।
कुल-वृद्धा को सौंप, कहा-यह-
माता, सभी तुम्हारा॥

दो दिन का उपवास किया फिर-
ज्ञान-विमल बिखराया।
दीक्षा का सकल्प सुनाकर-
परम लाभ को पाया॥

कुल-वृद्धा ने प्रभु के सम्मुख-
आशीर्वचन सुनाये।
'प्रभु के पथ पर विघ्न न होगे'-
दृढ विश्वास दिलाये॥

पञ्चमुष्टि-से लोच किया फिर-
प्रभु ने सबके सम्मुख।
'जय हे, जय हे'-बोले जन-जन-
होकर उनके अभिमुख॥

चार मुष्टि से मस्तक के सब-
केशो को था त्यागा।
एक मुष्टि से दाढी-मूंछो-
का जीवन भी भागा॥

स्वय इन्द्र ने ग्रहण किया था-
उन केशो को अपने।
उन केशो मे गुथे हुए थे-
दिव्य अपरिमित सपने॥

सिद्धो को फिर नमस्कार कर-
जन-जन-को वतलाया।
सिद्ध वही है जिसने अपनी-
आत्मा को है पाया॥

आत्म-ज्ञान से वढकर कोई-
ज्ञान नही है जग मे।
विघ्न अनेको आते लेकिन-
आत्मोन्नति के मग मे॥

सिद्ध जगत मे सागर जैसे-
है गम्भीर निरतर।
कल्पवृक्ष-सा जग को देते-
ज्ञान-लब्धि का अवसर॥

जहाँ न सुख-दुख, पीडा कोई-
अनुभव जन्म-मरण का।
सिद्ध बताते वही मोक्ष है-
कारण और करण का॥

जहाँ न तृष्णा, भूख-प्यास है-
जहाँ न निद्रा विस्मय।
मोह नही, उपसर्ग नही है-
मोक्ष वही है निश्चय॥

सिद्ध 'अजीव' वही है, जिसको-
सुख-दुख नही सताता।
कभी अहित की आशका से
भीत नही हो पाता॥

इहना कह कर प्रभु ने तत्क्षण-
साधु-धर्म स्वीकारा।
पॉच महाव्रत के साधन को-
मन मे तुरत उतारा॥

पहला व्रत है परम अहिसा-
दु ख न जो उपजाता।
पर पीडा मे जो लगता है-
तम से तम मे जाता॥

सत्य-दूसरा जिसे जगत का-
सारभूत ही मानो।
सत्य अनन्त कि इसको अपना-
परमेश्वर ही जानो॥

और अचौर्य तीसरा व्रत है-
साधन का प्रिय सम्बल।
लोभ-ग्रसित मन सिद्ध न होता-
रहता प्रतिक्षण चचल॥

ब्रह्मचर्य है चौथा जिसका-
पालन वडा उचित है।
ब्रह्मलीन इसके पालने से-
रहता प्रतिपल चित है॥

और पाँचवा अपरिग्रह है-
इच्छाओ का धारक।
आवश्यक जो, ग्राह्य वही है-
अन्य मोह उद्धारक॥

'जय-जय' के स्वर गूंजे नभ मे-
गूंजा सव दिग्मण्डल।
देव-लोक से प्रभु पर वरसे-
अनाघ्रत नव शतदल॥

स्वय इन्द्र ने वाम कध पर-
देव-दूष्य पट डाला।
वडा अलौकिक मूल्यवान-सा
निर्मल वडा निराला॥

× × ×

महा साधना के क्रम में प्रभु-
जहाँ-जहाँ भी जाते।
युवक-युवतियाँ, बाल-वृद्ध सब-
सुनकर दौड़े आते॥

वस्त्र हीन निज दिव्य रूप मे-
महा साधना तत्पर-
आते देख स्वय सब करते-
तन-मन सकल निछावर॥

प्रभु की पावन चरण-धूलि पर
राज-मुकुट लुंठित थे।
जीवन-जीव-जगत के कोई-
तत्त्व नही कुंठित थे॥

हस्तामलक सृष्टि थी सारी-
दृग मे ब्रह्म समाया।
जो भी जो सपना ले आया-
अपना सर्वस पाया॥

नवम सर्ग

वैशाली मे सोम नाम का-
एक विप्र था रहता।
निर्धन था वह तरह-तरह का-
दुःख अहर्निश सहता॥

एक बार वह वडी विपद मे-
पडकर था अकुलाया।
धन की खातिर देश छोड कर
वह विदेश था आया॥

सोचा,अर्जन कर के धन जब-
जायेगा वह घर मे।
उसकी पत्नी स्वय करेगी-
स्वागत मीठे स्वर मे॥

किन्तु भाग्य का खेल, वहाँ वह-
कमा नही कुछ पाया।
द्रव्य गांठ मे जो भी था वह-
उसने वहाँ गँवाया॥

अपने घर जब वापस आया-
खाली हाथो छूछा।
तुरत डपट कर उससे उसकी-
पत्नी ने ही पूछा॥

कहाँ गये थे मुद्रा लाने-
कौडी एक न लाई।
घर का भी सब द्रव्य गँवाया-
अच्छी रही कमाई॥

तुम से अच्छे अन्य सभी है-
घर बैठे सब पाये।
प्रभु ने वर्षीदान समय तो-
सब को सुखी बनाये।

उस अवसर पर वर्धमान ने-
मुद्रा दान किया था।
रोज हजारो मुद्राओ का-
दान महान दिया था॥

तुम रहते तो यह दिन मुझको-
नही देखना पडता।
निर्धनता के दुख का काँटा-
नही हृदय मे गडता॥

किन्तु अभागे, चूक तुम-
अब मै कैसे वोलूँ।
इस पीडा को, कहो, आज मै-
किसके सम्मुख खोलूँ॥

मै तो फिर भी, यह कहती हूँ-
वही आज तुम जाओ।
महावीर है जहाँ, वही पर-
जाकर शीश नवाओ॥

दया-मूर्ति है, करुणा-सागर-
निश्चय कृपा करेंगे।
पर-उपकार सिद्ध पुरुष है-
सब दारिद्रय हरेंगे॥

सोम विप्र को लगा कि जैसे-
राह पडी दिखलाई।
वर्धमान के दान-धर्म की-
गाथा पडी सुनाई॥

झटपट तीव्र वेग से चलकर-
वह विहार मे आया।
शीश झुकाकर प्रभु के आगे-
अपना कष्ट सुनाया॥

प्रभु के पास शेष था अब तो-
देव दूष्य-पट केवल।
उसको आधा चीर तुरत ही
दिया सोम को सम्बल॥

हर्षित होकर सोम वहाँ से-
घर मे अपने आया।
वस्त्र दिखाकर, पत्नी से वह
बोला—"देखो, लाया॥

मैं क्या जानूं कैसा है यह-
कैसी इसकी लीला।
प्रभु ने खुद ही मुझे दिया है-
अपना पर चमकीला॥"

पत्नी बोली—"प्रभु ने तुमको
महा प्रसाद दिया है।
निश्चय मगल होगा, प्रभु ने-
आशीर्वाद दिया है॥"

पुलकित तन वह चली वहाँ से-
बुनकर के घर आई।
बोली यह परिधान सलोना-
लाई हूँ मैं भाई॥

मुझे चाहिए इसकी कीमत-
जो भी मोल लगाओ।
मूल्य भला क्या दोगे, कुछ तो-
मुझको जरा बताओ॥

बुनकर बोला-"कहाँ मिला है-
यह अनमोल बडा है।
इसके रेशे-रेशे मे तो-
अद्भुत रत्न जडा है॥

इसका आधा जहाँ पडा है-
दे दो यदि तुम लाकर।
सच कहता, सब कष्ट मिटेगा-
उसको ही बस पाकर॥

लाखो मुद्रा तुम्हे मिलेगी-
जीवन सुखद बनेगा।
ऐसे तो यह आधा ही है-
कैसे कोई लेगा॥"

तुरत सोम से सब कुछ कह कर-
बोली—अब तुम जाओ।
प्रभु को अपनी विनय सुनाकर
आधा पट ले आओ॥

सोम गए, फिर झट से प्रभु के-
आगे शीश नवाया।
लेकिन कोई शब्द न फूटा-
बात न कुछ कह पाया॥

उल्टे पाँव वहाँ से लौटे-
मन ही मन सकुचाते।
यही सोचते, कैसे प्रभु को-
मन की बात बताते॥

लेकिन प्रभु सर्वज्ञ, सभी का-
सब कुछ देख रहे है।
बिना कहे, गति सब के मन की-
क्षण-क्षण लेख रहे है॥

सोम बढे, तो देखा आगे-
उडता वह पट आया।
यह आश्चर्य, वही झाडी मे-
दिखा पडा उलझाया॥

प्रभु की दया अपार हुई थी-
हँसते ही घर आये।
आकर अपनी पत्नी को फिर-
सुन्दर पट दिखलाये॥

पत्नी ने बुनकर को देकर-
दुख-दारिद्रय भगाया।
करुणा-सागर की करुणा पा-
सुख सौभाग्य जगाया॥

तब से ही प्रभु पूर्ण दिगम्बर-
रहने लगे धरा पर।
शान्त-विशुद्ध -अनन्त- अनावृत-
जैसे निर्मल अम्बर॥

दशम सर्ग

त्याग-मूर्त्ति नव ज्योति अकम्पित-
वीत राग सव ज्ञान-समन्वित।
प्रभु थे कठिन साधना मे रत-
ध्यानावस्थित खडे विटप-वत्।

क्षय करना था कर्म पुरातन-
अवरोधक मन का अवगुंठन।
उसी कुमार ग्राम का भोला-
गो-पालक आकर था बोला।

"मेरे यही पडे है गोचर-
जरा ध्यान तुम रखना इन पर।
जरा देखना भाग न जाये-
इनको कोई चुरा न पाये।"

बोला और गया फिर घर मे-
लौटा वापस साँझ प्रहर मे।
बोला—"दिखने नही यहाँ पर-
कहाँ गये सब मेरे गो-चर?"

प्रभु थे ध्यान-मगन क्या बोल-
कैसे उसकी गाँठे खोले।
बिना सुने कुछ, गोपालक फिर-
चला ढूंढने गोधन आखिर।

गाँव-गाँव मे घर-घर ढूँढा-
वन, पर्वत पर जा कर ढूँढा।
यहाँ वहाँ सब जगह अटकता-
रात-रात भर रहा भटकता।

पता न लेकिन कुछ भी पाया-
सारी रात रहा भरमाया।
खूब सवेरे जब आता है-
पास वही गो-धन पाता है।

प्रभु है अविकल ध्यान लगाये-
गो-धन पास उन्ही के आये।
गो-पालक को लगा कि जैसे-
उसने ही भटकाया ऐसे।

मूढ हृदय मे क्रोध जगा के-
रस्सा बैलो का ही ला के।
प्रभु पर खीच चलाया तत्क्षण-
अपने-पन से होकर उन्मत।

इन्द्र स्वयं फिर दौडे आये-
हाथ पकड कर सब समझाये ।
कहा कि देखो परम तत्व है-
जग मे इसका नव महत्व है।

मत समझो, कोई साधारण-
जन है, यह तत्वो का कारण।
वर्धमान है महावीर ये-
तप. पूत भव-इष्ट धीर थे।

सुन कर, गोपालक के मन मे-
भाव जगा, कुछ नूतन क्षण मे।
गिरा चरण पर अश्रु बहाया-
अपना सारा पाप मिटाया।

प्रभु का फिर गुण-गान सुना के-
चला हृदय से वह हर्षा के।

एकादश सर्ग

प्रभु थे ज्ञान-तत्व वैरागी
भव मे, भव से दृढ वैरागी।
ज्योति-ज्ञानमय-विभा निरतर-
फैल रही थी भूपर घर-घर।

परम पूज्य इस वसुन्धरा का-
करने को कल्याण धरा का।
कठिन साधना मे रत रहते-
स्वय अजाने सब कुछ सहते।

अस्थिक गाँव पधारे चल कर-
सोने-से निष्कलुष पिघल कर।
यहाँ एक मदिर का भीषण-
शूलपाणि - यक्षावृत - कर्षण।

यक्ष क्रूर था, सब डरते थे-
उसके भय से सब मरते थे।
वहाँ किसी मे शक्ति नही थी-
मन मे ऐसी भक्ति नहीं थी।

जिससे कोई प्राण बचाये-
क्रूर यक्ष को मार भगाये।
प्रभु थे उस मदिर मे जा के-
बैठे निश्चल ध्यान लगा के।

यक्ष रात मे घात लगा के-
टूटा उन पर वज्र गिरा के।
अट्टहास फिर किया जोर से-
अशनि-पात के तुमुल शोर से।

दिग-दिगन्त मे शोर हुआ था-
गर्जन चारो ओर हुआ था।
बनकर दानव गज के जैसे,
बडे-बडे फिर विषधर जैसे।

रूप विकट वह धर कर भू पर-
करता था आघात भयकर।
लेकिन निश्चिन्त अचल थे-
क्षण भर को भी नही विकल थे।

ध्यान लगाये रहे निरन्तर-
रह कर भू पर, भू से ऊपर।
यक्ष भयकर हुआ पराजित-
पाकर दारुण शक्ति अपरिमित।

अपना सब अपराध बता कर-
बैठा पग मे शीश नवा कर-
प्रभु से भीख क्षमा की माँगी-
विकट क्रूरता पल मे त्यागी।

सुखी हुए सब जन-पुरवासी-
होकर प्रभु के दृढ विश्वासी।

द्वादश सर्ग

एक साधु था क्रोध-विवश वह-
मर कर चैन न पाया था।
नाम चण्डकौशिक था उसका-
सर्प-योनि मे आया था॥

दृष्टिविष वह वडा क्रूर था-
सब को काट गिराता था।
वडा भयकर था, वह वन मे-
सब उत्पात मचाता था॥

जगल मे उस राह न कोई-
कभी भूल मे चलता था।
क्रोध-अध वह जिसे देखता-
उस पर जहर उगलता था॥

प्रभु ने ज्यो ही देखा जगल-
दया उमड कर आती है।
प्रभु की पावन कृपा दृष्टि
वन प्रान्तर नहलाती है।

उसकी बाँबी के सम्मुख प्रभु-
जाकर ध्यान लगाते हैं।
कण-कण ध्यानावस्थित मन के-
सौरभ खुद भर जाते है॥

कुपित सर्प ने सोचा, देख-
कौन यहाँ पर आया है।
किसे काल ने बरबस ऐसे-
असमय ग्रास बनाया है॥

उठा विकट फुंकार मारता-
तान भयंकर फण काला।
भीषण विष के विषम दाह में-
लगता था वह मतवाला॥

किया प्रहार क्रुद्ध हो प्रभु पर-
काम कर दाँत गड़ाता है।
अंग-अंग में विष से भरकर-
काँटा खूब चुभाता है॥

लेकिन यह क्या, हुआ अचम्भित-
प्रभु को निश्चिन्त देख वहाँ।
अरे अभागे हुआ यह क्या?
जहर भयंकर गया कहाँ।

उठा पुन वह, जहर अँगूठे-
मे प्रभु के फिर दे मारा।
किन्तु चकित था, देख कि उससे-
निकली दुग्ध धवल धारा॥

शीश उठा जो देखा प्रभु को-
शान्ति तनिक मन मे आई।
प्रभु के मुख-मण्डल की आभा
धरती तक पर थी छाई॥

समझ गये प्रभु यही समय है-
इसको कर्म छुडाना है।
सर्प-योनि से इसे उठा कर-
देव-योनि मे लाना है॥

साधु विमल था, किन्तु ग्रहो के-
फेरे मे भरमाया है।
पथ से स्वय भटक कर ऐसा-
आज विपम वन आया है॥

प्रभु ने कहा कि "देखो कौशिक-
क्रोध भयकर शान्त करो।
मन मे प्रभु का प्रेम जगाकर
करुणा का मधु स्रोत भरो॥

क्रोध, शिला की रेखा जैसे—
मन से कब मिट पाता है।
इसके पासो मे बँध कर नर-
घोर नरक मे जाता है॥

शमन करो यह क्रोध भयकर-
दया - भाव मन मे लाओ॥
आत्मा को विकसित करके तुम-
परम शान्ति अब पा जाओ॥"

प्रभु के इतना कहने से ही-
पूर्व जन्म सब ज्ञात हुआ।
क्रोध मिटा, तम धुला अचानक-
जागा नया प्रभात हुआ।

क्षमा माँग वह प्रभु से निश्चल-
देव योनि को पाता है।
तब से ही वह वन-प्रदेश की-
सुखद-सुभग बन जाता है।

त्रयोदश सर्ग

ज्ञान-रूप थी प्रभु की आभा-
देख सभी हर्षाते।
दूर-दूर से लोग उमड़कर-
उन्हें देखने आते॥

प्रभु भी अपनी चरम शान्ति से-
सबको दर्शन देते।
अहोभाग्य था सभी जनो का-
उनसे आशिष लेते।।

उनकी ज्ञान-विभा का सबको-
नव प्रकाश था मिलता।
परम विरागी का प्रभाव था-
सब जीवो पर पड़ता।।

सुरभी पुर से राजगृह को-
चले विमल मन प्रभुवर।
गगा पार चले थे करने-
एक नाव मे चढ कर।।

उसी समय पाताल लोक का-
सुदष्ट्र देव अकुलाया।
पूर्व जन्म का वैर अचानक-
उसके मन मे आया।।

प्रभु से उसको बडा द्वेष था-
पहले किसी जनम मे।
सोचा, विघ्न डाल दूं चल कर-
इनके प्रकृति नियम मे।

सहसा ज्वार उठा गगा मे-
आँधी भीषण आई।
लगा कि जैसे महाप्रलय की-
धार उमड लहराई॥

वहाँ नाव के अन्य सभी जन-
वेहद थे घबडाये।
क्रूर देव ने महा उपद्रव-
के थे जाल विछाये॥

किन्तु अचानक कम्वल-शम्वल-
नाग-देव दो आये।
देखा नैया मे वैठे है-
प्रभुवर ध्यान लगाये॥

दोनो ने मिल कर उस राक्षस-
को था तुरत भगाया।
फिर तो शान्ति चतुर्दिक छाई-
सबका मन मुस्काया ।।

सबने खुशी मनाई मन मे-
नयी लहर लहराई।
सबने प्रभु के विमल गुणो की-
कीर्ति समुज्ज्वल गाई ।।

× × ×

प्रभु के धैर्य-ध्यान की गाथा-
स्वय इन्द्र थे गाते।
इन्द्र पुरी की देव-सभा मे-
सबको स्वय सुनाते ।।

सुनकर सगम देव परीक्षा-
प्रभु की लेने आया।
विकट पिशाची रूप वरन कर-
ऊधम खूब मचाया ।।

व्याघ्र-सर्प-बिच्छू तक बन कर-
उनको खूब डराया।
नयी अप्सराओ को लाकर-
मन भर उन्हे लुभाया ॥

लेकिन इन उपसर्गो से भी-
भगवान् तनिक न डोले।
सब प्रहार सहते थे निर्भय-
शान्त - विशुद्ध - अबोले ॥

× × ×

ऐसे ही छम्माणि गाँव मे-
भगवान स्वय पधारे।
ध्यान लगा वे क्षय करते थे-
पूर्व कर्म को सारे ॥

कायोत्सर्ग ध्यान मे थे जब-
कोई ग्वाला आया।
'इन्हे देखते रहना'—कह कर-
बैल उन्हे दिखलाया ॥

कुछ क्षण बाद वहाँ जब आया-
देखा बैल नही थे।
कौन बताता, बैल वहाँ से-
भागे अभी कही थे।।

उसको क्रोध जगा वह प्रभु को-
मन-ही-मन धिक्कारा।
कठिन काठ की कील श्रवण मे-
ठोकी, वह हत्यारा।।

फिर भी निश्चल ध्यान लीन प्रभु-
डिगे न अपने व्रत से।
रहे अचल ध्यानस्थ अखडित-
पुण्य-सिन्धु शाश्वत से।।

कुछ दिन बीते, खरक वैद्य ने-
उनका शल्य निकाला।
पाप-कर्म के क्षय का अन्तिम-
पाप भस्म कर डाला।।

× × ×

ऐसे ही जब श्रावस्ती मे-
महावीर थे आये।
गोशालक ने अग्नि-शूल थे-
उन पर तान चलाये॥

गोशालक खुद कहता, मै ही-
तीर्थंकर हूँ जग मे।
कोई बाधा नही कही है-
मेरे जीवन-मग मे॥

प्रभु ने उसकी सारी गति-मति-
क्षण भर मे पहचानी।
मेरा धर्म-शिष्य था, लेकिन-
अब भी है अज्ञानी॥

सुनकर गोशालक चिल्लाया-
अभी भस्म कर दूंगा।
अग्नि-शूल यह तेरी खातिर-
अभी तुरन्त मे लूँगा॥

कह कर उसने तेजो लेह्या-
छोडी मुँह बिचका के।
लेकिन है आश्चर्य, मगर खुद-
अपना काल बुला के॥

कर प्रदक्षिणा अग्नि-शूल ने-
देखा प्रभु को मन से।
किन्तु जलाया गोशालक को-
उसके अशुभ लगन से॥

प्रभु के सारे पाप पूर्व के-
क्षय निश्चय हो आये।
ध्यानलीन वे परमावस्था-
मे थे दृष्टि गडाये॥

जग का हो कल्याण निरतर-
ध्यान लगाये रहते।
ज्ञानामृत की वर्षा होती-
जब भी वे कुछ कहते॥

लोकोत्तर कल्याण सृष्टि का-
उनका परम नियम है।
वीतराग के पथ मे तिल भर-
नही कही अब तम है॥

चतुर्दश सर्ग

दीर्घ तपस्वी महावीर ने-
नूतन ज्योति जगाई ।
भव का शाश्वत हित हो जिसमे-
ऐसी राह दिखाई ।।

तप से तेजोमय जीवन की-
नयी शिखा थी जगती।
नयी सिद्धि की आभा तन पर-
प्रतिदिन रही दमकती॥

एक समय वे पाँच मास-
पच्चीस दिनो का व्रत ले।
अभिग्रह के नव कठिन पथ पर-
साधन मे ही रत थे॥

द्रव्य, क्षेत्र औ' काल-भाव का-
पालन नियम कठिन था।
परम सिद्धि के तपोतेज के-
साधन का ही दिन था॥

ऐसे ही क्षण चदन वाला-
के उडद के वकले।
खुले सूप के कोने से ही-
अपने हाथो मे ले॥

ग्रहण किया था अभिग्रह से सब-
दान विभव सुखदाता।
महावीर तीर्थंकर स्वामी-
भूतल के थे त्राता॥

चम्पापति राजा की पुत्री-
थी वह चदन बाला।
पापोदय के कारण जीती-
पीकर विप का प्याला॥

विकना उसे पडा था अपने-
चम्पापति के घर से।
सेठ धनावह के घर आकर-
रहती थी वह डर से॥

इसकी पत्नी मूला उससे-
बेहद ईर्ष्या करती।
उसके सिर पर वडी लाछना-
दिन प्रतिदिन थी धरती॥

प्रभु के स्वीकृत अभिग्रह सारे-
पूर्ण यही थे होते।
सती पवित्र हुई थी चदन-
मन को धोते - धोते॥

विपद अनेको जीवन मे थी-
विकट रूप धर आई।
लेकिन बाला रही धैर्य से-
कभी नही घबडाई॥

तलघर मे मूला ने डाला-
कष्ट अनेको देकर।
किन्तु आज चन्दन थी दर पर-
प्रभु की भिक्षा लेकर।
× × ×

प्रभु तो कठिन तपस्या की ही
मूर्ति स्वय थे भू पर।
कुछ भी शेष अशेष नही था-
उनके पग के ऊपर॥

सभी शुभाशुभ कर्मों का क्षय-
तप से स्वय किया था।
सयम से तप-ध्यान प्रकाशित-
केवल ज्ञान लिया था॥

जो उपसर्ग मिले थे पथ मे-
जो भी सकट आये।
धैर्य - तपस्या - समतापूर्वक-
सबको सरल बनाये॥

दमित किया था राग-क्रोध-मद-
लोभ हृदय का सारा।
वीतराग नव ज्योति भुवन के-
भव का पुण्य - सहारा॥

पंचोदश सर्ग

सभी तरह परिपुष्ट हुए प्रभु-
तप के तेज प्रखर से।
दीप्त भुवन में हुई चेतना-
पावन पुण्य प्रहर से॥

सकल सृष्टि की पूर्ण व्यवस्था-
का जब ज्ञान समाया।
होकर वे अरिहत जगत को-
शुद्ध ज्ञान समझाया॥

कुछ भी दृश्य अदृश्य नही था-
उनके दृग के आगे।
भव का विभव सभी सम्भव था-
लेकिन सब थे त्यागे॥

मूर्त-अमूर्त नही था कुछ भी-
तीनो काल प्रकट थे।
उग्र-प्रचड तपस्या उनकी-
तप के दाह विकट थे॥

उनके केवल ज्ञान-प्राप्ति से-
इन्द्रासन तक डोले।
"तुरत रचाएँ" समवसरण हम-
देव यही थे बोले॥

इन्द्रलोक मे सभा जुटाकर-
तीर्थंकर को लाये।
पहले प्रवचन उसी सभा मे-
प्रभु ने उन्हे सुनाये।।

चलकर पावन पावापुर मे
तीर्थंकर है आते।
देव यहाँ पर सभा दूसरी-
आकर तुरत लगाते।।

आद्य धर्म का बोध दिया था-
महावीर ने उस क्षण।
पुलकित सुनकर वहाँ हुआ था
देवो का समवसरण।।

× × ×

पावापुर मे लगा हुआ था-
विद्वत् जन का मेला।
इन्द्रभूति-से ब्राह्मण अपना
दिखा रहे थे खेला।।

सुना कि कोई महावीर है-
तीर्थंकर बन आए।
तपोनिष्ठ सर्वज्ञ, ज्ञान के
दीपक नए जलाए॥

सुनकर उनके अह भाव को-
गहरी चोट लगी थी।
उनके मन मे कोई भीषण-
पातक खोट जगी थी॥

शास्त्रार्थ वे करने आये-
उस क्षण भरी सभा मे।
आकर लेकिन लगे डूबने-
उनकी ज्ञान विभा मे॥

महावीर ने कहा कि आत्मा-
अन्तस्तत्त्व प्रबल है।
शेष सभी कुछ द्रव्य, सृष्टि मे-
मन से बड़ा निबल है॥

किन्तु स्वरूप-दृष्टि जब जगती-
एक सभी लगती है।
जड-जगम मे भेद न रहता-
प्रीति अचल पगती है॥

काम-क्रोध सब जड पदार्थ है-
उससे भिन्न जगत मे।
आत्मलीन ही रहता केवल-
भापित ज्ञान सतत् मे॥

अन्तर मे ही मोक्ष और बन्धन-
का द्वार छिपा है।
अपने हाथो ही मगल औ-
सब सहार छिपा है॥

जो विज्ञाना वह ही आत्मा-
आत्मा ही विज्ञाना।
शुद्ध ज्ञानमय दर्शन से यह-
तत्व मनुज है पाना॥

आत्मा मे जो लीन वही तो-
सम्यक दृष्टि कहाना।
वही मनुज करतव से अपने-
परमात्मा बन जाता॥

आत्मा का कुछ नाश न होता-
यह ही है अविनाशी।
परम शुद्ध आत्मा रहती है-
ज्ञान-सुधा की प्यासी॥

सुनकर इन्द्रभूति के मन में-
प्रेम उमड भर आया।
झट से उठकर प्रभु के पग मे-
उसने शीश नवाया॥

मिटी सभी शकाएँ मन की-
कोई द्वन्द्व नही था।
धुला वही क्षण भर मे सारा-
जो भी कलुप कही था॥

अपने सब शिष्यो के सग ही-
दीक्षा प्रभु से लेकर-
इन्द्रभूति भी हुआ विश्व मे-
पुण्य लोक का सहचर ॥

प्रभु ने फिर विचरण कर जग मे-
ज्ञान-किरण बिखराई ।
घने तिमिर मे पडे मनुज को-
सच्ची राह बताई ॥

पूर्ण बहत्तर वर्ष हुए जब-
पावापुर मे आ के ।
देश-देश के ज्ञान-पिपासु-
जन को पास बिठा के ॥

प्रभु ने अन्तिम दिव्य देशना-
सबको वहाँ सुनाई ।
प्राणिमात्र के हित की सारी-
बाते वहा बताई ॥

उर्ध्वश्वास जग आया सहसा
उस अमर्त्य के मन मे।
ज्योति-ज्योति से मिली अकम्पित-
निर्मल मर्त्य भुवन मे॥

उर्ध्वाकाश हुए वे भव के-
देह-गेह से ऊपर।
लेकिन भास्वर ज्ञान-ज्योति वह-
सदा रहेगी भू पर॥

षष्ठोदश सर्ग

भाव-ज्योति का अस्त हुआ पर-
द्रव्य ज्योति जग आये ।
दीपोत्सव हो उठे, सबो ने-
नव - नव दीप जलाये ।।

अन्तिम था कल्याणक उत्सव-
नई लहर लहराई।
इन्द्रादिक देवो ने मिलकर-
प्रभु की चिता सजाई॥

क्षीर सिन्धु के जल से प्रभु का-
शुभ अभिषेक कराया।
हरि चन्दन का लेप लगाकर-
रेशम वस्त्र चढाया॥

स्वर्ण-रत्न के मुकुट और-
आभूषण उन्हे पिन्हाए।
देवो की निर्मित शिविका पर-
प्रभु को ला बैठाए॥

सब देव-मनुज मिल शिविका को
सादर वहाँ उठाया।
शोकाकुल से अश्रु-भरे वे-
चिता जलाने आए॥

पूर्ण हुई जब सारी विधियाँ-
चिता लहक लहराई।
देवो ने फिर उनकी महिमा-
सबको वहाँ सुनाई॥

× × ×

तीर्थकर के ज्येष्ठ शिष्य थे-
गौतम परम तपस्वी।
ज्ञान-साधना-पुष्ट हृदय से-
दृढ चैतन्य मनस्वी॥

अडिग स्नेह था प्रभु पर इनको-
थे अखण्ड विश्वासी।
सदा श्रवण करते थे जैसे-
मुग्ध चातकी प्यासी॥

यही स्नेह तो परम सिद्धि मे-
विघ्न स्वरूप बना था।
उनकी निर्मल आत्मोन्नति मे-
बाधा बना तना था॥

प्रभु ने देखा, इस बाधा को-
आज तोडना होगा।
इसके मन को आत्म-ज्योति से-
त्वरित तोडना होगा।।

जिस दिन था निर्वाण, उन्होने-
उनको पास बुलाया।
धीर भाव से गौतम को फिर-
अपने पास बिठाया।।

कहा कि गौतम पास गाँव मे-
अभी तुरत ही जाओ।
वहाँ देव शर्मा ब्राह्मण को-
तुम प्रतिबोध सुनाओ।।

आज्ञापालक गौतम तत्क्षण-
दूर वहाँ से आए।
जाकर ब्राह्मण को फिर गुरु का-
सब प्रतिबोध सुनाए।।

चले वहाँ पर पथ पर अपने-
धीर बनाए मन को।
गुरु के पावन देह त्याग की-
खबर मिली तब उनको।।

लगा कि जैसे वज्र गिरा हो-
फूट-फूट कर रोये।
गुरु की स्मृति मे आँसू-जल से
मन का कल्मष धोये।।

करुण विलाप किया फिर क्षण-क्षण-
प्रभु का नाम सुनाकर।
मुझको ऐसे छोड दिया क्यो-
आज यहाँ पर गुरुवर।।

सहसा लगा कि मन मे जैसे-
ज्ञान उभर कुछ आया।
तात्विक बोध हृदय मे निर्मल-
फूल सदृश मुस्काया।।

समझ गए, निर्मोही का मन-
मोह घिरा क्यो होगा।
मोह तिमिर है, उससे वेष्टित-
ज्ञान शिरा क्यों होगा॥

एक-पक्ष इस स्नेह प्रवल को-
मन-ही-मन धिक्कारा।
दृग से गुरु का रूप मनोहर-
मन मे तुरत उतारा॥

लगा कि जैसे दिव्य मूर्ति-
भगवान् स्वय हैं आए।
अपनी दिव्य प्रभा से भू पर-
नव-नव ज्योति जगाए॥

परम विरागी थे संन्यासी
सव कुछ क्षण मे पाए।
केवल ज्ञान मिला, तव भव मे-
प्रभु की महिमा गाए॥

महावीर तीर्थंकर जय-जय-
जय-जय ज्ञान-विधाता।
जय हे, कठिन तपस्या भू की-
जय हे जग के त्राता॥

परम सिद्धि के दायक जय हे-
परम ज्ञान-वैरागी।
जय हे भव की सकल सिद्धियाँ
जय हे निश्चल त्यागी॥

जय हे ज्ञान समन्वित जग के-
ज्योति-शिखर अधिवासी।
जय हे आत्मोन्नति के धारक-
जय अखण्ड विश्वासी॥

जय हे मानव-गुण-गरिमा के-
दिव्य शिखर अभिमानी।
जय हे तप पूत नर पावन-
परम ज्ञान के ज्ञानी॥

जब तक सूरज-चाँद रहेगा
तेरी शिखा जगेगी।
तेरे पग की धूलि निरन्तर-
सृष्टि शीश पर लेगी॥

